भाषा पर रार, उचित नहीं है यह तकरार

drishtiias.com/hindi/printpdf/conflict-over-language-is-undesirable

इस 10 रुपए के नोट में भारत की भाषाई विविधता परिलक्षित हो रही है। 'लेकिन यह भाषाई विविधता खतरे में है' ऐसा दक्षिण भारतीय राज्यों को लगने लगा है, तभी तो हाल ही में कर्नाटक ने एक अलग ध्वज बनाने को लेकर एक समिति का गठन किया है। साथ ही बंगलूरू मेट्रो में हिंदी में लिखी उद्घोषणाओं पर काला पेंट कर उन्हें मिटाया जा रहा है।

यद्यपि राज्यों को अलग गान (एंथम) की तरह अपना अलग ध्वज रखने पर कोई वैधानिक रोक नहीं है और संविधान में इस बारे में कुछ भी स्पष्ट नहीं कहा गया है। फिर भी इस प्रकार की घटनाएँ चिंतित करने वाली हैं।

दरअसल, आज केंद्र सरकार जिस तरह से हिंदी को लेकर आक्रामक दिख रही है और भाषा जैसे संवेदनशील मुद्दों पर जिस तरह से भीड़तंत्र द्वारा फतवे जारी हो रहे हैं उनसे दक्षिण भारत के लोगों को लग रहा है कि उनकी भाषाई पहचान खतरे में है।

विदित हो कि कानूनी प्रावधानों को संज्ञान में लिये बिना ही कर्नाटक सरकार के इस कदम को देशद्रोह बताया जा रहा है, जबकि सोचने वाली बात यह है कि आखिर दक्षिण भारतीय राज्य इतने आक्रामक क्यों हो रहे हैं? भाषा को लेकर देखी जा रही इस आक्रामकता के कारणों एवं समाधान के संबंध में बात करने से पहले नज़र दौड़ाते हैं हालिया घटनाक्रम पर।

हालिया घटनाक्रम

- कर्नाटक ने कहा है कि उसके द्वारा प्रस्तावित अलग ध्वज बनाने पर विचार करने के लिये उसने एक समिति गठित की है। समिति इस मुद्दे के सभी पहलुओं की जाँच करेगी।
- दरअसल, राष्ट्रीय ध्वज को लेकर तीन अलग-अलग अधिनियम हैं परन्तु इनमें से कोई भी कर्नाटक को ऐसा करने से नहीं रोकता है। कर्नाटक के प्रस्तावित ध्वज में लाल एवं पीला रंग है।
- इस ध्वज को लेखक एवं कन्नड़ कार्यकर्त्ता मा. रामामूर्ति ने 1966 में तैयार किया था। उनका जन्म 11 मार्च, 1918 को हुआ था। उनका उपनाम 'कन्नड़ वीर सेनानी' है।
- राज्यों द्वारा अलग ध्वज रखने का मामला एक नीतिगत विषय है, इसके फायदे और नुकसान पर विचार करके ही कोई फैसला लिया जाना चाहिये।
- हालाँकि यदि वैधानिकता की बात करें तो राज्यों द्वारा अलग ध्वज रखने को लेकर कोई वैधानिक प्रतिबंध जैसी बात नहीं है और संविधान में इस बारे में कुछ भी स्पष्ट नहीं कहा गया है।

दक्षिण भारतीय राज्यों की आक्रामकता के कारण

- दक्षिण भारतीय राज्यों द्वारा दिखाई जा रही इस आक्रामकता के मूल में केंद्र सरकार के कुछ निर्णय हैं।
- विदित हो कि भारत सरकार के विदेश मंत्रालय ने कहा है कि पासपोर्ट बनवाने के लिये दिया जाने वाला विवरण अंग्रेज़ी के साथ-साथ अब हिंदी में भी दिया जा सकता है।
- कुछ दिनों पहले कहा गया था कि भारत के राष्ट्रपति और अन्य मंत्री जल्द ही अपने भाषणों को केवल हिंदी में देने के लिये बाध्य होंगे।
- इस तरह के प्रयासों के कारण गैर-हिंदी भाषी राज्यों को यह डर सता रहा है कि कहीं आने वाले समय में उनकी भाषाई पहचान ही खत्म न हो जाए।
- हालाँकि, दक्षिण भारतीय राज्यों द्वारा दिखाई जा रही इस आक्रामकता का कारण केवल केंद्र सरकार के तत्कालीन कदम ही नहीं हैं, बल्कि बेख़ौफ़ भीड़ और भीड़ के नुमाइंदों के वक्तव्यों ने भी आग में घी डालने का काम किया है।
- ध्यातव्य है कि हाल ही में दिल्ली एनसीआर में कुछ अफ्रीकी छात्रों को पीटे जाने का मामला प्रकाश में आया था। क्या यह नस्लभेदी हमला था, इस तरह के सवालों के जवाब में यह कहना कि जब हम दक्षिण भारत के लोगों के साथ शांतिपूर्वक रह रहे हैं तो अफ्रीकी लोगों के साथ कैसे भेदभाव कर सकते हैं, निंदनीय है।

भाषाई पहचान को अक्षुण्ण रखने की ज़रूरत

- विदित हो कि 26 जनवरी, 1950 को जब हमारा संविधान लागू हुआ तो इसमें देवनागरी में लिखी जाने वाली हिंदी सहित 14 भाषाओं को आठवीं सूची में आधिकारिक भाषाओं के रूप में रखा गया था।
- संविधान के मुताबिक 26 जनवरी, 1965 में हिंदी को अंग्रेज़ी के स्थान पर देश की आधिकारिक भाषा बनना था और उसके बाद हिंदी में ही विभिन्न राज्यों को आपस में और केंद्र के साथ संवाद करना था।
- ऐसा आसानी से हो सके इसके लिये संविधान में 1955 और 1960 में राजभाषा आयोगों को बनाने की भी बात कही गई थी। इन आयोगों को हिंदी के विकास के सन्दर्भ में रिपोर्ट देनी थी और इन रिपोर्टों के आधार पर संसद की संयुक्त समिति के द्वारा राष्ट्रपति को इस संबंध में कुछ सिफारिशें करनी थीं।
- गौरतलब है कि देश को आज़ादी के बाद के 20 सालों में भाषा के मुद्दे ने सर्वाधिक परेशान किया था और एक समय तो स्थिति इतनी गंभीर हो गई थी कि भाषा के विवाद के कारण देश का विखंडन अवश्यंभावी दिखने लगा था। दक्षिण भारत के राज्यों में रहने वालों को डर था कि हिंदी के लागू हो जाने से वे उत्तर भारतीयों के मुकाबले विभिन्न क्षेत्रों में कमज़ोर स्थिति में हो जाएंगे।
- हिंदी को लागू करने और न करने को लेकर होने वाले आंदोलनों के बीच वर्ष 1963 में 'राजभाषा कानून' पारित किया गया जिसने 1965 के बाद अंग्रेज़ी को राजभाषा के तौर पर इस्तेमाल न करने की पाबंदी को खत्म कर दिया। हालाँकि, हिंदी का विरोध करने वाले इससे पूरी तरह संतुष्ट नहीं थे और उन्हें लगता था कि पंडित नेहरू के बाद इस कानून में मौजूद कुछ अस्पष्टता फिर से उनके विरुद्ध जा सकती है।
- 26 जनवरी, 1965 को हिंदी देश की राजभाषा बन गई और इसके साथ ही दक्षिण भारत के राज्यों मुख्य रूप से तमिलनाडु (तब का मद्रास) में, आंदोलनों और हिंसा का एक जबर्दस्त दौर चला और इसमें कई छात्रों ने आत्मदाह तक कर लिया।

- इसके बाद लाल बहादुर शास्त्री के मंत्रिमंडल में सूचना और प्रसारण मंत्री रहीं इंदिरा गांधी के प्रयासों से इस समस्या का समाधान निकाला गया जिसकी परिणति 1967 में राजभाषा कानून में संशोधन के रूप में हुई।
- उल्लेखनीय है कि इस संशोधन के ज़रिये अंग्रेज़ी को देश की राजभाषा के रूप में तब तक आवश्यक मान लिया गया, जब तक कि गैर-हिंदी भाषी राज्य ऐसा चाहते हों; आज तक यही व्यवस्था चली आ रही है।

क्या होना चाहिये

- भारत एक विशाल और विविधताओं वाला देश है जहाँ प्रशासन और लोगों के मध्य संवाद स्थापित करने के लिये एक सामान्य भाषा की आवश्यकता है।
- भारत की आज़ादी के सूत्रधार रहे राजनेताओं का भी यही मानना था कि आधिकारिक भाषा के तौर पर किसी ऐसी भाषा का चुनाव किया जाए जो बहुसंख्यक जनता द्वारा बोली जाती हो या फिर भारतीय सभ्यता की शास्त्रीय भाषा के तौर पर हिंदी या संस्कृत को यह दर्ज़ा दिया जाए।
- लेकिन हिंदी को बढ़ावा देने के साथ ही हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि इसकी वज़ह से दूसरी भाषाओं पर कोई नकारात्मक असर न पड़े।
- उदाहरण के लिये विदेश मंत्रालय जब पासपोर्ट के लिये आवश्यक जानकारियाँ अंग्रेज़ी के अलावा हिंदी में भी देने को मंज़ूरी दे रहा था तो अन्य प्रमुख भाषाओं का भी ख्याल रखा जाना चाहिये था।
- यह जायज बात है कि यह सुविधा केवल हिंदी को ही क्यों मिले जबकि तमिल, तेलुगु, और कन्नड़ बोलने वाले लोगों की संख्या भी ठीक-ठाक हैं।
- अपनी भाषाई पहचान को बनाए रखने के लिये आवाज़ उठाना सही बात है लेकिन यह कानून के दायरे में होना चाहिये। मराठी, तमिल, कन्नड़ या तेलुगु न बोल पाने के कारण दक्षिण भारतीय राज्यों में किसी उत्तर भारतीय को पीटा जाना भी उतना ही निंदनीय है जितना कि रंग-रूप के आधार पर दक्षिण भारतीयों की पहचान तय करना।

निष्कर्ष

- भारत का संविधान यूँ ही नहीं दुनिया का सबसे बेहतरीन संविधान कहा जाता है, संविधान निर्माण के लिये गठित संविधान सभा में कभी तीखी बहसें हुईं, तो कभी शानदार वक्तव्यों ने अन्य सदस्यों को मेजें थपथपाने पर मजबूर कर दिया।
- उल्लेखनीय है कि संविधान सभा की सबसे तीखी बहस हिंदी को भारत की आधिकारिक भाषा बनाने को लेकर हुई थी। संविधान सभा में हिंदी को आधिकारिक भाषा का दर्ज़ा महज़ एक मत के अंतर से प्राप्त हुआ था यह दिखाता है कि भाषा का मुद्दा कितना संवेदनशील है।
- भारतीय लोकतंत्र अपनी शैशवावस्था में ही भाषाई विवादों में घिसटकर लहूलुहान हो चुका है, लेकिन अब हम एक परिपक्व लोकतंत्र हैं। सच यह भी है कि आज हिंदी धीरे-धीरे देश के कोने-कोने में फैल रही है और इसका कारण हिंदी सिनेमा और टेलीविज़न, प्रवासन तथा संस्कृतियों का आपस में घुलना-मिलना है।
- हिंदी को संवाद शून्यता खत्म करने वाली भाषा माना जा रहा है, लेकिन हमें यह ध्यान रखना होगा कि यह स्थानीय भाषाओं की जगह नहीं ले सकती। भारत ने भाषाई आधार पर राज्यों के निर्माण की व्यवस्था को स्वीकार किया है क्योंकि उप-राष्ट्रीय पहचान की वास्तविकताओं को नजरंदाज़ नहीं किया जा सकता।

- ये कुछ ऐसी बातें हैं जिन्हें हिंदी के सबसे आक्रामक तरफदार अक्सर भूल जाया करते हैं। हालाँकि, सरकार को भी इन आक्रामक तरफदारों के समान व्यवहार नहीं करना चाहिये, क्योंकि भाषा के नाम पर एक नई जंग विकास के पथ पर आगे बढ़ते भारत के पैरों की बेड़ियाँ बनने का ही काम करेंगी।